योग्यता पर जोर देकर चीन ने किया चमत्कार

आरक्षण के बजाय उत्कृष्टता पर ध्यान दें तो समृद्धि लाकर देश को पूरी तरह बदल सकते हैं

गुरचरण दास , लेखक व स्तंभकार

जिस दिन राज्यसभा ने संविधान संशोधन को मंजूरी देकर उच्च शिक्षा और सरकारी नौकरियों में गरीब सवर्णों को 10 फीसदी आरक्षण का रास्ता साफ किया, उस दिन संयोग से मेरे मेल बॉक्स में एक ई-मेल आया। यह भारत और चीन में योग्यता आधारित सामाजिक व्यवस्था की तुलना पर आधारित हार्वर्ड के एक रिसर्च प्रोजेक्ट के बारे में था। हार्वर्ड का यह प्रोजेक्ट इस विश्वास पर आधारित है कि दुनिया के दो सबसे बड़े और पुराने समाज भिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं के बावजूद प्रतिभा प्रबंधन के बारे में एक-दूसरे से सीख सकते हैं। चूंकि मैंने संगठनों का प्रबंधन संभाला है तो मुझे मालूम है कि प्रतिभा समाज में सबसे कम पाया जाने वाला संसाधन है और सही जगह पर सही व्यक्ति के होने से ही सारा फर्क पैदा होता है। इसलिए जब संसद ने कानून पारित किया तो मुझे बहुत दुख हुआ, क्योंकि इस कानून ने सर्वाधिक प्रतिभाशालियों के लिए अवसर घटा (अब सिर्फ 40 फीसदी) दिए। खास तौर पर सबसे महत्वपूर्ण शासन और शिक्षा व्यवस्था में।

हर लोकतांत्रिक व्यवस्था के सामने यह समस्या रहती है कि उत्कृष्टता और निष्पक्षता का मेल कैसे हो। भारत ने जाति के आधार पर ऐतिहासिक असमानता के बदले दलितों व आदिवासियों के लिए आरक्षण देकर समाधान निकाला। यह अस्थायी कदम था लेकिन, 70 साल बाद भी न सिर्फ मौजूद है बल्कि राजनीतिक होड़ ने इसे अन्य पिछड़ी जातियों तक विस्तार दे दिया है। अब उच्च शिक्षा व सरकारी नौकरियों में आधे स्थान योग्यता पर आधारित न होकर आरक्षित हैं। यह सही है कि इससे निम्न जातियों का स्वाभिमान और दर्जा ऊंचा हुआ है पर उनका आर्थिक दर्जा नहीं बढ़ा है (सिर्फ 'क्रीमी लेयर' छोड़कर)। इसके दो कारण हैं एक, नतीजों की परवाह न करने वाली सड़ी हुई शिक्षा प्रणाली, जो छात्रों को रोजगार योग्य बनाने में नाकाम रहती है। दो, आर्थिक मॉडल जो सुदूरपूर्व के एशियन टाइगर्स और चीन की तरह बड़ी संख्या में ऊंची नौकरियां पैदा करने में नाकाम रहा।

हम चीन के उदय से चमत्कृत है लेकिन, इस बड़े चमत्कार में योग्यता आधारित व्यवस्था ने जो भूमिका निभाई, उसकी सराहना नहीं करते। बेशक, चीन में प्राचीन काल से ही राजनीतिक उत्कृष्टता (पॉलिटिकल मेरिटोक्रेसी) का आदर्श मौजूद रहा है। ढाई हजार साल से भी पहले चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस ने कहा था कि जो शासन करते हैं उन्हें वंश परम्परा की बजाय गुणों व योग्यता के आधार पर ऐसा करना चाहिए। 10वीं सदी से 1905 तक चीनी अधिकारियों मुख्यत: एक प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से चुने जाते थे। प्रदर्शन के कठोरता पूर्वक किए आकलन के आधार पर उनकी पदोन्नति होती थी। राजनीतिक उत्कृष्टता की यह अवधारणा चीन से पश्चिम में गई और विचित्र बात है कि इसका माध्यम ब्रिटिश कालीन भारत बना था।

'द चाइना मॉडल : पॉलिटिकल मेरिटोक्रेसी एंड द लिमिट्स ऑफ डेमोक्रेसी' के लेखक डेनियल बेल के मुताबिक चीन में देंग शियाओपिंग ने योग्यता के प्राचीन आदर्श को 1978 में फिर बहाल किया। हम चीन के आर्थिक सुधारों के बारे में बहुत कुछ जानते हैं लेकिन, उसके राजनीतिक सुधारों की हमने अनदेखी कर दी। बेल हमें बताते हैं कि पिछले चार दशकों में उच्च गुणवत्ता की शिक्षा के जरिये चीन में उत्कृष्टता के लिए अथक प्रयास किए गए। इसके साथ प्रतिभाशाली लोगों को शासन के महत्वपूर्ण स्थानों पर नियुक्त करने से देश की नेतृत्व क्षमता में अत्यधिक वृद्धि हो गई है। योग्यता पर इस तरह ध्यान केंद्रित करने से न सिर्फ कार्यकुशलता में सुधार हुआ बल्कि गरीबी को लगभग पूरी तरह मिटाकर चीन को मध्यवर्गीय राष्ट्र बना दिया गया है। हालांकि, भ्रष्टाचार फैला हुआ है और लोकतांत्रिक जवाबदेही मौजूद नहीं है लेकिन, सबके लिए जो समृद्धि और सुशासन आया है उससे साधारण व्यक्ति संतुष्ट है।

1991 के आर्थिक सुधारों के बाद भारत के उदय ने भी गरीबी में काफी कमी लाकर मध्यवर्ग का विस्तार किया लेकिन, चीन के सामने यह सफलता फीकी है। चीन की तुलना में भारत इस तरह फायदे में है कि इसने जीवंत लोकतंत्र के जरिये लोगों को बोलने की आज़ादी दी है लेकिन, इसकी तुलनात्मक नाकामी कमजोर शासन व शिक्षा है, क्योंकि भारत में प्रतिभा की अत्यधिक बर्बादी होती है। यदि भारत ने अपनी कुछ राजनीतिक ऊर्जा आरक्षण से हटाकर सरकार की क्षमता बढ़ाने में लगाकर शिक्षा व शासन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सर्वाधिक योग्य अधिकारियों को नियुक्त किया होता तो आज आम आदमी बेहतर स्थिति में होता। मुझे संदेह है कि भारतीय अपनी व्यवस्था को अपनी खामियों के बावजूद चीनी व्यवस्था से बदलना चाहेंगे। फिर भी उत्कृष्टता पर जोर देने के चीन के रवैये से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। लोकतंत्र में निर्वाचित राजनेता आमतौर पर भावी पीढ़ियों की कीमत पर आज के मतदाता के हितों को महत्व देते हैं। यही कारण है कि भारत की सरकारों ने शिक्षा व स्वास्थ्य में आमतौर पर सबसे कमजोर मंत्रियों व अधिकारियों को रखा है। इसीलिए हमारे समाज में काफी संख्या में मूढ़ लोग शिक्षक, पुलिसकर्मी और निचली अदालतों के जज बन जाते हैं। बेल ने बताया है कि कैसे चीन में प्रवेश के स्तर पर और फिर अधिकारी के पूरे कॅरिअर में और शासन के सबसे निचले स्तर तक योग्यता पर जोर देने से सामान्य लोगों के दैनिक जीवन की समस्याओं का समाधान हुआ और इससे राजनीतिक नेताओं को लोगों की नज़र में वैधता मिली।

भारत में 10% नए आरक्षण में बड़ी खामी है और यदि यह न्यायिक समीक्षा में खरा उतर भी गया तो वक्त आ गया है कि कोटे पर आधारित समाधान की समीक्षा की जाए। सकारात्मक कार्रवाई के बेहतर तरीके भी हैं। कोटा इसलिए भी बुरा है, क्योंकि इससे राष्ट्र की ऊर्जा प्रतिभाओं के पोषण से हटती है। 21वीं सदी में भारत के सामने लोकतंत्र और उत्कृष्टता का मेल कराने की चुनौती है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि हर स्तर पर सर्वाधिक प्रतिभाशाली लोग नेतृत्व करें। तो आइए हम जानें कि चीन ने कैसे समृद्धि व समानता, दोनों को संभव बनाया। जब उच्च स्तर की शिक्षा के साथ भ्रष्टाचार मुक्त, योग्यता आधारित शासन होता है तब सस्ता श्रम खुली, वैश्विक व्यापार प्रणाली में प्रतिस्पर्धात्मक धार देता है। इससे एक पीढ़ी के भीतर ही ऊंचा मेहनताना संभव हो पाता है। एक बार निजी क्षेत्र में ऊंचे वेतन वाले भरपूर जॉब हो जाए तो आरक्षण के लिए संघर्ष अपने आप खत्म हो जाएगा और पूरा राष्ट्र मध्यवर्गीय हो जाएगा। भारत को इसी तरह बदला जा सकता है।

रिजर्व बैंक के संतुलित और सधे हुए कदम ने दी राहत

संपादकीय

भारतीय रिजर्व बैंक ने उम्मीद के मुताबिक रेपो रेट में 25 बेसिस पॉइंट की कटौती करके विकास को प्राथमिकता देने की पहल की है, क्योंकि महंगाई दरें काबू में हैं। जनवरी से मार्च तक खुदरा महंगाई दर 2.4 प्रतिशत आंकी गई है और अप्रैल से सितंबर के बीच इसके 3.4 प्रतिशत होने का अनुमान है। इस स्थिति ने केंद्रीय बैंक को यह आत्मविश्वास दिया कि वह महंगाई काबू करने की कड़ाई वाली नीति से तटस्थता की नीति पर लौट सके। इससे पहले सरकार और केंद्रीय बैंक के बीच इस बात पर टकराव होता रहता था कि दरें घटाईं जाएं या नहीं। यह टकराव पूर्व गवर्नर रघुराम राजन और उर्जित पटेल के कार्यकाल में होता रहा है।

आमतौर पर केंद्रीय मंत्री रिजर्व बैंक गवर्नर के कठोर रवैए से नाराज हो जाया करते थे, जबकि बैंक के प्रमुख का सारा जोर महंगाई काबू में रखने पर होता था। इस बार एमपीसी के दो सदस्यों विरल आचार्य और चेतन घेटे ने रेपो

दरें घटाए जाने के विरुद्ध मतदान किया। जबकि गवर्नर शक्तिकांत दास ने इसके पक्ष में वोट दिया। दास के आने के साथ ही यह कहा जाने लगा था कि अब सरकार और बैंक के रिश्ते अच्छे होंगे। वह दिखाई भी पड़ने लगा है। रिजर्व बैंक के विमर्श में विकास शब्द लौट आया है और चुनाव से ठीक पहले सरकार को ऐसी ही अपेक्षा थी। निश्चित तौर पर अंतरिम बजट में राहत पाया मध्य वर्ग चाहेगा कि उसे और भी राहत मिले और उसे अच्छे दिन का अहसास हो। रिजर्व बैंक के इस कदम से मकान के कर्ज की ईएमआई घटेगी, गाड़ियों पर कर्ज सस्ता होगा और कर्ज लेने वालों को दूसरी सुविधाएं भी हासिल होंगी। किसानों की कर्ज की सीमा 60,000 बढ़ने के साथ ही नान बैंकिंग फाइनेंशियल कंपनियों (एनबीएफसी) के संकट का भी ध्यान रखने की बात गवर्नर ने कही है। फरवरी के अंत तक एनबीएफसी के नियम भी बदल दिए जाएंगे तो उनका संकट भी कम होगा। हालांकि दरों में कोई बड़ी कटौती नहीं कही जाएगी फिर भी रियल एस्टेट में इससे राहत और तेजी भी महसूस की जाएगी। बैंक की इस कटौती का वित्तीय क्षेत्र के विशेषज्ञों ने स्वागत किया है। इसे देखकर यही कहा जा सकता है कि इसका असर पड़ेगा लेकिन, धीरे-धीरे। विकास की रफ्तार अच्छी है और आगे उसके कायम रहने की उम्मीद है। इसलिए रिजर्व बैंक के इस कदम को एक संतुलित और सधा हुआ कदम माना जा सकता है।

Faith and Freedom

Sabarimala belongs to the devotee. It mustn't become a space for contestation

TOI Editorials

By supporting the entry of all believers to Sabarimala irrespective of age and sex, the Travancore Devaswom Board (TDB) has taken a stance consistent with the constitutional right to equality and freedom to worship without discrimination. The Board's changed stance is reflective of the Supreme Court judgment of September 2018. The court had ruled 4-1 against the ban and custom preventing girls and women between 10 and 50 from entering Sabarimala. But implementing the judgment has tested the state government's resolve.

It ran into strong protests from devotees, who believe the verdict endangers Lord Ayyappa's naisthik brahmacharya, to caste outfits like Nair Service Society, Sangh Parivar groups, and political organisations like BJP and Congress. Nevertheless, two women, Bindu and Kanakadurga, did make it through under heavy police protection, though many others had to turn back in the face of violent protests. A new controversy has erupted with dissenting Board president A Padmakumar claiming he wasn't consulted on the TDB's change of position.

In deciding the 56 review petitions, it remains to be seen if Supreme Court will factor in the protests, the difficulties faced by women in entering Sabarimala, and the socioeconomic turmoil that it has created in Kerala with numerous hartal calls disrupting public life. The strong dissent authored by Justice Indu Malhotra, who opined that the equality doctrine enshrined under Constitution's Article 14 does not override religious freedoms consonant with the tenets of a religion, will also weigh heavily on the five-judge bench.

It is noteworthy that women were allowed entry to Sabarimala for the rice-feeding ceremony of their children until a 1991 judgment of the Kerala high court acting on a PIL enforced a complete ban on women entry. The Board even charged a fee for the ceremony and would issue a receipt too. One of the ironies of secular India is that the state and its wings like the executive, judiciary and legislature have repeatedly got embroiled in religious matters. The task of social reform is a slow and painful process. Moreover political parties often get into the act, with an eye on

political mileage and with no regard for the disruptions in public life and livelihoods that they cause. Hopefully, with time the Sabarimala dispute will settle down and everyone will respect the court verdict even as women of all ages are allowed entry to the temple.

For online Course